हरिद्रा
(सांस्कृतिक शोध का अन्तर्राष्ट्रीय उपक्रम)
ISSN : 2582-9092

अर्थसंग्रह की अर्थवत्ता

प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल

प्रस्तावना

वेद वेदांगों का अध्ययन व्यवस्थित ढंग से समाप्त कर लेने वाला ही धर्म का जिज्ञासु इस ग्रंथ को आधिकारिक ढंग से पढ़ सकता है। अर्थसंग्रह का प्रतिपाद्य विषय भी धर्म ही है। कहीं–कहीं अधर्म के निदर्शन भी होते हैं किन्तु निरसन करने के लिए ही उसका प्रतिपादन किया गया है। अतः जिज्ञासु का ध्यान गौण रूपेण उधर जाता है। धर्म और ग्रंथ (अर्थसंग्रह) में बोध्य बोधक भाव अथवा प्रतिपाद्य–प्रतिपादक भाव सम्बंध है। धर्मानुष्ठान से सामान्यतया स्वर्गादिक फल ही इसका प्रयोजन है। इसीलिए मीमांसा दर्शन के प्रथम सूत्र की अवतारणा ''अथ परमकारुणिको भगवाज्जैमिनिधर्मविवेकाय द्वादशलक्षणी प्रणिनीय (प्रणिनाय) तत्रादौ धर्मजिज्ञासां सूत्रयामास–अथातो धर्मजिज्ञासेति।'' गहन वेदाध्ययन उपरान्त भगवान् जैमिनि ने धर्म का ज्ञान कराने के लिए बारह लक्षणों वाले मीमांसा दर्शन को अपनी कुशल बुद्धि में समारोपित कर उसके आदि में धर्मविषयक जिज्ञासा को 'अथातोधर्मजिज्ञासा' सूत्र द्वारा संक्षेप में विश्लेषित किया। यों देखा जाय तो 'अथ' शब्द वेदाध्ययन की निरन्तरता का सूचक है। प्रायः 'अथ' शब्द अनेकार्थवाची है। इसके प्रमुख अर्थों में मांगलिक निरन्तरता, आरम्भ प्रश्न और कात्स्नर्ग है। अमरकोश में 'मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ' कहा गया है।

मुख्य शब्द

मिमांसा, वेद वेदांग, अर्थ संग्रहकार, विधि

मीमांसा को समझने के लिए लौगाक्षिभास्कर ने अर्थसंग्रह की रचना कीः

''वासुदेव रमाकान्तं नत्वालौगाक्षिभास्करः।
कुरूते जैमिनिनये प्रवेशायार्थसंग्रहः।''[1]

रमा (लक्ष्मी) के कान्त (प्रिय वल्लभ) वासुदेव (कृष्णरूपी विष्णु) को नमस्कार करके (अनधीत मीमांसाशास्त्र जिज्ञासुओं के) जैमिनीप्रणीतशास्त्र (मीमांसा दर्शन) में प्रवेश हेतु लौगाक्षिभास्कर अर्थसंग्रह की रचना कर रहा है। यानी अर्थसंग्रह मीमांसाशास्त्र का ग्रंथ है। विषय, विशय (संशय) पूर्वपक्ष, उत्तर पक्ष और निर्णय इन पंचांगों से युक्त वाक्य ग्रंथ कहलाता हैः

''विषयो विशयश्चैव पूर्व पक्षस्तथोत्तरम्।
निर्णयश्चेति पंचांगं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।।''

ISSN : 2582-9092

धर्म का प्रतिपादन अर्थसंग्रह का विषय है। धर्म के सम्बंध में संशय मीमांसा विरोधियों के पूर्वपक्ष के रुप में तर्क, उत्तरपक्ष के रुप में उनका उत्तर और अंत में धर्म विषयक निर्णय अर्थसंग्रह इन पॉचों अंगों से युक्त सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है। किसी भी ग्रंथ के प्रारम्भ में अनुबंध चतुष्ट्य को भली प्रकार जानना चाहिएः

''सम्बंधश्चाधिकारी च विषयश्च प्रयोजनम्।
बिनानुबंधं ग्रंथादौ मंगलं नैव शस्यते।''

ग्रंथ पढ़ने का अधिकारी, ग्रंथ का विषय, विषय तथा ग्रंथ का सम्बंध और पुस्तक पढ़ने का प्रयोजन इन चारों प्रश्नों के उत्तर को अनुबंध कहते हैं। वेदान्तसार के अनुसार ''तत्रानुबंधो नामाधिकारिविषयसम्बंध प्रयोजनानि'' यानी सबसे पहले जिज्ञासु को विषय सम्बंधी ग्रंथ का ज्ञान चयन होना चाहिए, इसे जिज्ञासु समझ पायेगा या नहीं, इसके अध्ययन से क्या–क्या विशिष्टताएँ मिलेंगी तब तक जिज्ञासु उसके अध्ययन में प्रवृत्त होने का अधिकारी नहीं है। यों कहा भी गया हैः–

''सिद्धार्थं सिद्धसम्बंधं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते।
शास्त्रादौतेन वक्तव्यः सम्बंध सप्रयोजनः।''

यानी प्रयोजन वगर किसी भी ग्रंथ को नहीं पढ़ा जाता है। किसी भी वस्तु या कार्य का प्रयोजन जिज्ञासु को भली प्रकार समझना चाहिए। इसीलिए श्लोकवार्तिककार का कथन अक्षरशः सत्य हैः

''सर्वस्यैव शास्त्रस्यकर्मणोवापि कस्यचित्।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तत्केन गृहयते।''[2]

यानि वेद वेदांगों का अध्ययन व्यवस्थित ढंग से समाप्त कर लेने वाला ही धर्म का जिज्ञासु इस ग्रंथ को आधिकारिक ढंग से पढ़ सकता है। अर्थसंग्रह का प्रतिपाद्य विषय भी धर्म ही है। कहीं–कहीं अधर्म के निदर्शन भी होते हैं किन्तु निरसन करने के लिए ही उसका प्रतिपादन किया गया है। अतः जिज्ञासु का ध्यान गौण रूपेण उधर जाता है।

धर्म और ग्रंथ (अर्थसंग्रह) में बोध्य बोधक भाव अथवा प्रतिपाद्य–प्रतिपादक भाव सम्बंध है। धर्मानुष्ठान से सामान्यतया स्वर्गादिक फल ही इसका प्रयोजन है। इसीलिए मीमांसा दर्शन के प्रथम सूत्र की अवतारणा ''अथ परमकारुणिको भगवाज्जैमिनिधर्मविवेकाय द्वादशलक्षणी प्रणिनीय (प्रणिनाय) तत्रादौ धर्मजिज्ञासां सूत्रयामास–अथातो धर्मजिज्ञासेति।'' गहन वेदाध्ययन उपरान्त भगवान् जैमिनि ने धर्म का ज्ञान कराने के लिए बारह लक्षणों वाले मीमांसा दर्शन को अपनी कुशल बुद्धि में समारोपित कर उसके आदि में धर्मविषयक जिज्ञासा को 'अथातोधर्मजिज्ञासा' सूत्र द्वारा संक्षेप में विश्लेषित किया। यों देखा जाय

ISSN : 2582-9092

तो 'अथ' शब्द वेदाध्ययन की निरन्तरता का सूचक है। प्रायः 'अथ' शब्द अनेकार्थवाची है। इसके प्रमुख अर्थों में मांगलिक निरन्तरता, आरम्भ प्रश्न और कात्स्नर्ग है। अमरकोश में 'मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ' कहा गया है। यों देखा जाय तो आनन्तर्य और अधिकार अर्थों में प्रयुक्त अथ शब्द को यहाँ 'अन्यार्थनीयमानोदककुम्भवत्' न्याय से मंगलार्थक भी कहा जा सकता हैः

''ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।

कण्ठभित्वा विनिर्यातौ तेन मांगलिकावुभौ।''[3]

लौगाक्षिभास्कर ने मंगल, आनन्तर्य और अधिकार के लिए अथ शब्द का प्रयोग किया है। जैमिनिदर्शन (मीमांसा दर्शन) में 16 अध्याय हैं – इनमें प्रथम बारह 'द्वादशलक्षणी' और अंतिम चार अध्याय संघर्षकांड या देवताकांड के नाम से जाने जाते हैं। यों लौगाक्षिभास्कर – द्वादशलक्षणी को ही जैमिनि की रचना मानते हैं। शबरस्वामी एवं कुमारिल के भाष्य भी 'द्वादशलक्षणी' पर ही लिखे गये हैं। 'द्वादशलक्षणी' के प्रतिपाद्य विषय का विवरण इस प्रकार हैः– (1) विधि (धर्म) आदि का प्रामाण्य, 2. विधिनिहित कर्मों का भेद अर्थात् एक धर्म से दूसरे धर्म (विधि) का पार्थक्य, 3. विहित कर्मों में अंगांगिभाव, 4. क्रतुप्रयुक्त अनुष्ठेय एवं पुरुषार्थप्रयुक्त अनुष्ठेय कर्मों का परिमाण, 5. कर्मों के अनुष्ठान का क्रम, 6. अधिकार अर्थात् यज्ञ करने वाले पुरुष की योग्यता, 7. प्रकृतियाग में उपदिष्ट अंगों का विकृतियाग में सामान्यातिदेश, 8. प्रकृतियाग में उपदिष्ट 'आग्नेयोऽष्टाकपाल' इत्यादि अंगों का 'सौर्य चरुं निवंपेत्' इत्यादि विकृतियागों में द्रव्य देवतादि के द्वारा सप्रपंच विशेषादिदेश, 9 ऊह 10. बाध, 11. तंत्र, 12. प्रसंग। प्रायः समग्रवेद का तात्पर्य धर्म में हैः ''वेदस्य सर्वस्य धर्मतात्पर्यवत्वेन धर्मप्रतिपदिकत्वात्'' अर्थात् धर्मज्ञान ही वेदाध्ययन का दृष्ट प्रयोजन है।

लौगाक्षिभास्कर, कुमारिल भट्ट एवं पार्थ सारथि मिश्र4 का मत तकरीबन एक ही है। इसके विपरीत प्रभाकर एवं उनके अनुयायी मीमांसक वेदाध्ययन को अदृष्टार्थक मानते हैं। यों देखा जाय तो दृष्ट एवं अदृष्ट दोनों ही फल सुनिश्चित हैं किन्तु स्पष्ट प्रमाण के लिए उसे दृष्टार्थक माना जायः'' सम्भवति दृष्टफलकत्वेऽदृष्ट कल्पनाया अन्याय्यत्वात्'' इसीलिए सामान्य लोक अर्थसंग्रह की ओर आकृष्ट होगा। यानी धर्मजिज्ञासा ही परम कर्तव्य है। प्रायः जिज्ञासा कर्तव्या के स्थान पर 'विचारः कर्तव्यः' वाक्य बन जाता है और तब 'अथातो धर्मविचारः कर्तव्यः' के रूप में मूल सूत्र का भावार्थ घटित होता है। धर्म के लक्षणः 'अथ को धर्मः, किं तस्य लक्षणमिति चेत्, उच्यते–यागादिरेव धर्मः। तल्लक्षण वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति। अनर्थफलकत्वादनर्थभूते श्येनादावतिव्याप्तिवारणायार्थ इति।'' यानी धर्म क्या है? उसका लक्षण क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर याग (यज्ञ) आदि क्रियाएँ ही धर्म हैं। इसका लक्षण–

ISSN : 2582-9092

'वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः' यानी वेद प्रतिपादित प्रयोजन वाला एवं सार्थक इष्टसाधक ही धर्म है। मीमांसा दर्शन के चतुर्थ अध्याय में जैमिनि ने इष्ट साधक होने तथा वेदबोधित होने के कारण श्येन कर्म को ही धर्म कहा है।

इस प्रकार प्रयोजन, भोजनादि और श्येनकर्म आदि में धर्म लक्षण की अतिव्याप्ति रोकने के लिए ग्रंथकार ने क्रमशः प्रयोजवत्, वेदप्रतिपाद्य और अर्थ (इष्ट) पदों का प्रयोग करते हैं।'' न च चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म' इति सौत्रतल्लक्षणविरोधश्चोदना पदस्य विधिरूपवेदैकदेशपरत्वादिति वाच्यम्। तथापि चोदनाशब्दस्य वेदमात्र परत्वात्। वेदस्य सर्वस्य धर्मतात्पर्यक्त्वेन धर्म प्रतिपादिकत्वात्।'' ग्रंथकार द्वारा प्रस्तुत धर्मलक्षण 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' इस सूत्र द्वारा प्रतिपादित धर्मलक्षण से विरोध है क्योंकि वहाँ 'चोदना' पद वेद का एक देश विधि मात्र का वाचक है– ऐसा नहीं कहना चाहिए। वहाँ सूत्र में भी चोदना शब्द वेदमात्र परक है, वेदैकदेश विधिमात्र परक नहीं, सम्पूर्ण वेद का तात्पर्य धर्म में होने से तथा समग्र वेद के धर्म का ही प्रतिपादक होने के कारण ऐसा हुआ है।

अर्थसंग्रहकार लौगाक्षिभास्कर ने धर्म का लक्षण 'वेद प्रतिपाद्य प्रयोजनवदर्थो धर्मः' किया है। इन्होंने वेद के पाँच विभाग–विधि, मंत्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद ''सच विधिमंत्रनामधेयनिषेधार्थवादभेदात् पंचविधः, माना है।

धर्म के इस लक्षण का जैमिनि प्रोक्त धर्मलक्षण 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' से विरोध प्रतीत होता है क्योंकि जैमिनि सूत्र में 'चोदना' पद मात्र से 'विधि' का बोध होता है, समग्र वेद का नहीं। अतः 'यजेत् स्वर्गकामः' आदि प्रेरक विधियाँ जो यागादि सम्पादन हेतु प्रेरित करती हैं: 'चोदना' कही जाती है– ''चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकवचनमाहुः' शबरस्वामी। कुमारिल भट्ट के अनुसार चोदना उपदेश और विधि समनार्थक शब्द हैं– ''चोदना चोपदेशश्च विधिश्चैकार्थ वाचिनः''5 इसीलिए अर्थसंग्रहकार ने भी 'चोदनापदस्य विधिरुपवेदैकदेशपरत्वात्' कहा है। तब चोदना के मात्र विधिपरक होने के कारण अर्थसंग्रहकार द्वारा प्रस्तुत धर्म के लक्षण का जैमिनिप्रोक्त धर्मलक्षण से स्वतः विरोध उपस्थित हो जाता है क्योंकि विधि तो वेद के पाँच विभागों में से केवल एक है और सम्पूर्ण वेद का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। यों देखा जाय तो अर्थसंग्रहकार लौगाक्षिभास्कर और जैमिनि के धर्मलक्षणों में तात्विक विरोध नहीं है। जैमिनि प्रोक्त धर्मलक्षण 'चोदनालक्षणोधर्मः? में भी चोदना पद का तात्पर्य वेदमात्र में है, उसके एक देश विधिमात्र में नहीं। चोदना पद का अर्थ विधिवाक्य है किन्तु मंत्र और नामधेय भी तो विधि से ही सम्बंध रखते हैं।

ISSN : 2582-9092

मंत्र अनुष्ठान में तत्सम्बद्ध द्रव्य, देवता, क्रिया आदि का स्मरण करते हैं: ''प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः मंत्राः। तेषां च तादृशार्थस्मारकत्वेनैवार्थक्त्वम्''6 इसी प्रकार नामधेयों की भी सार्थकता है कि उनसे विधेय क्रिया का बोध होता है। ''नामधेयानां च विधेयार्थपरिच्छेदकतयार्थवत्त्वम्'7 प्रायः मंत्र और नामधेय भी विधि से सम्बंधित हैं। प्रशंसा परक अथवा निन्दापरक वाक्य अर्थवाद कहे जाते हैं।

अर्थवाद का तात्पर्य विधेय की प्रशंसा और निषेद्ध की निंदा कर जिज्ञासु को विहित के सम्पादन से इष्ट की प्राप्ति और निषिद्ध से निवृत्त कर अनिष्ट से सुरक्षा करने में है: ''प्राशस्त्यनिन्दान्यतरपरं वाक्यमर्थवादः। तस्य च लक्षणया प्रयोजनवदर्थ'8यों अर्थवाद भी विधि से ही सम्बंधित है। पुरूष को किसी क्रिया से निवृत्त कराने वाले निषेध कहे जाते हैं। अनिष्टोत्पादक क्रियाओं से पुरूष को निवृत्त करना ही इनका प्रयोजन होता है। अतः प्रकारान्तर से निषेधवाक्य भी विधेय के सम्पादनार्थ प्रेरक ही होते हैं अथवा ये निषेधवाक्य भी निषेद्ध कार्य न करने की प्रेरणा न देने के कारण प्रेरक होते हैं: ''पुरुषस्य निवर्तकं वाक्यं निषेधः।

निषेधवाक्यानामनर्थहेतुक्रियानिवृत्तिजनकत्वेनैवार्थवत्वात्।''9

कुमारिल भट्ट के अनुसार चोदना शब्द का अर्थ 'प्रवृत्तिस्थल या निवृत्तिस्थल में उससे पूर्व होने वाली शब्दश्रवणजन्य बुद्धि' है–'' प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा या शब्दश्रवणेन धीः सा चोदना''10 इस प्रकार मंत्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद–चारों ही किसी न किसी रूप में 'विधि' से सम्बंधित हैं। जिस प्रकार चोदना (विधि) धर्म का प्रतिपादन करती है, उसी प्रकार मंत्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद भी धर्म का ही प्रतिपादन करते हैं। अतएव जैमिनिप्रोक्त सूत्र में 'चोदना' पद का अभिप्राय सम्पूर्ण वेद ही समझना चाहिए। तब 'वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः' और 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' यों देखा जाय तो दोनों धर्मलक्षणों में कोई भेद नहीं रह जाता है।

विधिपरक पद में धातु प्रत्ययांशों के अर्थ ''स च यागादिः 'यजेत् स्वर्गकामः' इत्यादिवाक्येन स्वर्गमुद्दिश्य पुरुषं प्रति विधीयते। तथा हि–यजेतेत्यत्रास्त्यंशद्वयं यजि धातुः प्रत्ययश्च। प्रत्ययेऽप्यस्त्यंशद्वयमारख्यातत्वं लिंगत्वं च। तत्राख्यातत्वं दशलकारसाधारणं लिंगत्वं पुनर्लिंगमात्रे।'' यानी याग का विधान किस की सिद्धि के लिए किया जा रहा है? यानी स्वर्गादपि रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिए किया जा रहा है। स्वर्ग की कामना प्राणियों में मात्र पुरुष ही करता है। अतः 'यजेत् स्वर्गकामः' का अर्थ जो पुरूष स्वर्गफल की कामना करता हो वह याग या यज्ञ करे।

ISSN : 2582-9092

'भावना नाम सवितुर्भावनानुकूलो भवायितुर्व्यापार विशेषः। सा द्विधा शाब्दी–आर्थी भावनाचेति।'' उत्पन्न होने वाली वस्तु आदि की उत्पत्ति में उत्पादक का जो व्यापार विशेष कारण होता है, उसे भावना कहते हैं। यानी भावना व्यापार विशेष अर्थात् क्रिया विशेष है। भावना के दो भेद शाब्दी एवं आर्थी भावना हैं। शाब्दी भावना से श्रोता में आर्थी भावना उत्पन्न होती है। 'यजेत स्वर्गकामः' में पहले शाब्दी के साथ आर्थी भावना अन्तर्लिप्त है। प्रयोजक का वह मानस व्यापार जो प्रयोज्य पुरूष में प्रवृत्युत्पादन का हेतु है, उसे शाब्दी भावना कहा जाता है। मानस व्यापार को क्रियान्वित करने की प्रक्रिया आर्थी भावना से समझी जाती है। शाब्दी भावना में साध्य, साधन और रतिकर्तव्यता तीन– अंश नितांत अपेक्षित हैं। यानी शाब्दी भावना का साध्य आर्थी भावना है क्योंकि एक ही प्रत्यय से दोनों भावनाओं का बोध होता है। स्वर्गादिप्रयोजन रूपफल विषयक इच्छा से उत्पन्न यागादिरूपक्रिया–विषयक व्यापार आर्थी भावना है। यानी आर्थी भावना भी साध्य, साधन और इतिकर्तव्यता इन तीन अंशों की ''किं भावयेत्, केन भावयेत्, कथं भावयेत्'' के रूप में आकांक्षा रखती है। इस आर्थी भावना का साध्य स्वर्गादिफल है।

कोई भी कार्य किसी विधि विशेष पर निर्भर है। यानी 'विधिश्चतुर्विधः उत्पत्तिविधिर्विनियोग विधिरधिकारविधिः प्रयोगविधिश्चेति।'' किसी भी प्रधान क्रिया का विधान करने वाली उत्पत्ति विधि, प्रधान क्रिया के अंगभूत द्रव्य, संख्या, प्रोक्षणादि क्रियाओं का बोध अथ च अंग और अंगी के मध्य अंगांगिभाव सम्बंध का बोध कराने वाली विधि विनियोग विधि कहलाती है। अधिकार विधि याग के अनुष्ठाता व्यक्ति की योग्यता का निर्णय करती है। मुख्य क्रिया की अंगभूत अन्य अवान्तर क्रियाओं के क्रम का विधान करने वाली विधि प्रयोग विधि कही जाती है। विधि के तीन विभाजन के अनुसार विधि, गुणविधि और गुणविशिष्ट विधि का समायोजन कहीं न कहीं उपरोक्त से है। 'शब्दसामर्थ्यं लिगम्' यानी शब्द सामर्थ्य को लिंग कहते हैं। यानी शब्दगत एवं अर्थगत भेद से सामर्थ्य के दो प्रकार हैं। शब्द का कार्य अर्थप्रकाशन है। दो वाक्यों की परस्पर आकांक्षा प्रकरण कही जाती है। यानी प्रकरण के महाप्रकरण एवं अवांतर प्रकरण भेद काफी समीचीन हैं। मुख्य अर्थात् फल भावना से सम्बंधित प्रकरण को महाप्रकरण कहते हैं। अंग भावना सम्बंधी प्रकरण को अवांतर प्रकरण कहते हैं। ''तत्र क्रमो नाम विततिविशेषः पौर्वापर्यरूपो वा' यानी प्रयोग विधि प्रकार के विस्तार के क्रम पर निर्भर है, दूसरे पूर्वापर भाव को ही क्रम कहते हैं।

निष्कर्षः

क्रम के निर्णायक श्रुत्यादि के छः प्रमाण ''तत्र षट् प्रमाणानि' श्रुति–अर्थपाठ–स्थान–मुख्य प्रवृत्याख्यानि' यानी श्रुति, अर्थ, पाठ, स्थान, मुख्य और प्रवृत्ति प्रमाण हैं। क्रमबोधक वाक्य को श्रुति कहते

ISSN : 2582-9092

हैं। जहाँ पर प्रयोजनवशात् क्रम का निर्णय अर्थक्रम है। पदार्थबोधक वाक्यों का क्रम ही पाठ क्रम है। उपस्थिति को स्थान कहा जाता है। प्रधान के क्रम के अनुसार अंगों का क्रम मुख्य क्रम है। साथ–साथ अनुष्ठान किये जाने वाले प्रधानों में सन्निपत्योपकारक अंगों की आवृत्ति से अनुष्ठान के कर्तव्य होने पर द्वितीयादि पदार्थों का प्रथमानुष्ठित पदार्थक्रम को ही प्रवृत्ति क्रम कहा जाता है। श्रीमद् भगवद्गीता स्मृति में कहा गया है:

''यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यासि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।।''[11]

श्रुतिमूलक होने के कारण स्मृति भी प्रमाण है। अपने इस मत की पुष्टि में वे मीमांसा सूत्र के स्मृति पाद की ओर संकेत करते हैं जिसमें महर्षि जैमिनि ने स्मृति को श्रुति मूलक होने के कारण प्रामाण्य रूप में स्वीकार किया है। यों देखा जाय तो अर्थसंग्रह की रचना का प्रयोजन लौगाक्षिभास्कर इसी को मानते हैं:–

''बालानां सुखबोधाय भास्करेण सुमेधसा।
रचितोऽयं समासेन जैमिनीयार्थसंग्रहः।।''[12]

यानी सुमेधावी लौगाक्षिभास्कर ने बालकों को सुखपूर्वक ज्ञान के लिए जैमिनि दर्शन (मीमांसा) के इस अर्थसंग्रह की संक्षेप में रचना की। जिन्होंने समग्र ग्रंथों का अध्ययन कर लिया हो वही पूर्णमीमांसा को अर्थसंग्रह के माध्यम से समझ सकता है। हालॉकि इस पर बहुत से ग्रंथ उपलब्ध हैं। ज्यादा से ज्यादा ग्रंथ या टीकाएँ पढ़ने से भ्रम भी पैदा होता है। ऐसी विषम परिस्थिति में लौगाक्षिभास्कर का 'अर्थसंग्रह' व्यापक परिप्रेक्ष्य में पठनीय है। संक्षिप्त विवेचन से अर्थसंग्रह की अर्थवत्ता आज के संदर्भ में समझ में आएगी।

सन्दर्भ–ग्रंथ–सूची

1. लौगाक्षिभास्कर : अर्थसंग्रह – श्लोकः 1
2. श्लोक वार्तिककार :1/12
3. अमरकोश : श्लोक 10
4. पार्थ सारथि मिश्र : शास्त्र दीपिका 1/1/1
5 पार्थ सारथि मिश्र : शास्त्र दीपिका

ISSN : 2582-9092

6. लौगाक्षिभास्कर : अर्थसंग्रह
7. लौगाक्षिभास्कर : अर्थसंग्रह नामधेय प्रकरण, पंक्ति –1
8. लौगाक्षिभास्कर : अर्थसंग्रह नामधेय प्रकरण, पंक्ति 1–2
9. लौगाक्षिभास्कर : अर्थसंग्रह निषेध प्रकरण : पंक्ति 1–2
10. कुमारिल भट्ट : श्लोकवार्तिक
11. श्रीमद् भगवद् गीता : स्मृति
12. लौगाक्षिभास्कर : अर्थसंग्रह

पता :
आचार्य,
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज – 211002